पाठ्य पुस्तकें संक्रमण में
अपूर्वानंद झा

Textbooks in Transition
by Apoorvanand Jha
June 21, 2010

भारत में स्कूली शिक्षा पर जो भी सार्वजनिक वाद-विवाद होता है वह ज़्यादातर पाठ्यपुस्तकों पर ही केंद्रित रहता है और इसमें भी सबसे अधिक चर्चा होती है इतिहास की पाठ्यपुस्तकों पर. शायद यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि स्कूली शिक्षा योजना में सिर्फ़ पाठ्यपुस्तकें ही हैं जो सामने दिखाई पड़ती हैं और उनका विश्लेषण और उन पर वाद-विवाद किया जा सकता है. अध्यापकों, बच्चों, माँ-बाप या फिर समुदाय के लोगों की मानसिकता का अपना महत्व है, लेकिन पाठ्यपुस्तकों का महत्व उनसे कहीं अधिक है. पाठ्यपुस्तकों को आधिकारिक तौर पर मान्य ज्ञान का परिचायक माना जाता हैभारत जैसे देश में पाठ्यपुस्तकों का महत्व और भी ज़्यादा है क्योंकि स्कूली बच्चों के लिए सूचना और ज्ञान का वही एकमात्र स्रोत है. अधिकांश बच्चों के घर पर तो राज्य की आर्थिक मदद से प्रकाशित इन पाठ्यपुस्तकों के अलावा न तो कोई अन्य शैक्षणिक संसाधन होते हैं और न ही कोई मुद्रित सामग्री होती है. अध्यापकों से अपेक्षा की जाती है कि वे पूरी निष्ठा के साथ इन पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु को विद्यार्थियों तक पहुँचा दें और स्कूलों में सभी स्तरों पर आयोजित परीक्षाएँ भी इन पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित रहें.

स्कूली पाठ्यपुस्तकों पर होने वाले वाद-विवाद का सबसे अधिक दिलचस्प पहलू यह है कि अधिकांशतः ऐसे विवाद न तो विद्वज्जन उठाते हैं और न ही शिक्षक समुदाय. ये विवाद उठते हैं सड़कों से. पहली पाठ्यपुस्तक पर जो विवाद पैदा हुआ था वह 1977 में हुआ था. यह पुस्तक थी भारत का प्राचीन इतिहास और इसके लेखक थे प्रोफ़ेसर राम शरण शर्मा. यह वर्ष था जब इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी चुनाव हार गई थी और सत्ता से हटा दी गई थी. इसके स्थान पर जनता पार्टी नाम से एक नई पार्टी सत्ता में आई थी. इसका गठन अलग-अलग विचारधाराओं वाले दलों के विलय से हुआ था. इनमें बस एक ही बात समान थी और वह थी कांग्रेस का विरोध. इस पार्टी में हिंदुत्व की विचारधारा पर आधारित दक्षिणपंथी जनसंघ पार्टी का घटक काफ़ी बड़ा था. पटना में प्रोफ़ेसर शर्मा की पुस्तक की प्रतियाँ जलाई गईं और दक्षिणपंथी हिंदुत्ववादी संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा से प्रेरित विद्यार्थी संघ ने इस पर रोक लगाने की माँग भी की. उसके बाद यह पुस्तक स्कूलों से हटा दी गई और और तीन वर्ष की संक्षिप्त अवधि के बाद जब कांग्रेस पार्टी सत्ता में लौटी तो पुस्तक पर लगे प्रतिबंध को हटा दिया गया.

इससे यह मान्यता पनपने लगी कि स्कूली पाठ्यपुस्तकें, विशेषकर इतिहास की पाठ्यपुस्तकें सरकारों के बदलने पर बदलती रहेंगी. इस वाद-विवाद की रूपावली को बदलने का पहला महत्वपूर्ण प्रयास 1992 में किया गया. भारत सरकार द्वारा प्रोफ़ेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई और समिति से कहा गया कि वह बच्चों पर शिक्षा के बोझ के मामले पर विचार करे और यह सुझाए कि इसमें सुधार कैसे लाया जा सकता है. समिति की रिपोर्ट में प्रोफ़ेसर यशपाल ने लिखा,

“बच्चों पर पड़ने वाले बोझ के सिलसिले में स्कूली बैग के मूल बोझ पर विस्तार से चर्चा की गई और मैं और समिति के मेरे सहयोगी यह स्वीकार करते हैं कि सबसे अधिक खतरनाक बोझ है विषय को न समझने का.”

समिति की रिपोर्ट में एक अध्याय पाठ्यपुस्तकों की समस्या पर ही केंद्रित है. इस अध्याय में बताया गया है कि “कुछ अपवादों को छोड़कर हमारी पाठ्यपुस्तकें मूलतः सूचनाएँ या “तथ्य” ही प्रदान करती हैं, वे बच्चों को कुछ सोचने या खोजने के लिए प्रेरित नहीं करतीं..” अपाठ्यता, बच्चों के दैनिक जीवन और पाठ्यपुस्तकों की सामग्री के बीच संवादहीनता, भाषा और शैली में कृत्रिमता और सूचनाओं का घनत्व कुछ ऐसे दोष हैं जो पाठ्यपुस्तकों में भरे पड़े हैं.

यशपाल समिति ने दृढ़ता से अपील की है कि पाठ्यपुस्तकों के लेखन की संस्कृति में परिवर्तन लाया जाए और इसे बच्चों के लिए मात्र राज्य प्रवर्तित सत्य के संप्रेषण का माध्यम न बनाया जाए. दुर्भाग्यवश इस रिपोर्ट से स्कूली शिक्षा से जुड़ी एजेंसियों की सोच में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और इसे दबा दिया गया.

2004 में जब भारतीय जनता पार्टी की एनडीए सरकार को हटाकर उसके स्थान पर कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में केंद्र में यूपीए सरकार बनी तो इस रिपोर्ट को पुनर्जीवित किया गया. पिछली सरकार ने पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों में भारी परिवर्तन किए थे और अपनी विचारधारा का एजेंडा (पाठ्यपुस्तकों में हिंदुत्ववादी विचारधारा को लाकर) लागू करने के कारण उनकी व्यापक आलोचना भी हुई थी. एक बार फिर विवाद के केंद्र में थीं इतिहास की पुस्तकें. पिछले दो दशकों से रामशरण शर्मा, रोमिला थापर और बिपन चंद्र जैसे नामी लेखकों की जो पुस्तकें पाठ्यक्रम में थीं, उन्हें यह कहकर हटा दिया गया था कि उन पर वामपंथी विचारधारा का प्रभाव है. सरकार के बदलने से यह उम्मीद थी कि पुरानी पुस्तकें फिर से बहाल कर दी जाएँगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ. सरकार ने राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद से कहा कि यशपाल समिति की ठंडे बस्ते में पड़ी रिपोर्ट को आधार बनाकर एक नया राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क तैयार किया जाए और इसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि शिक्षण को बच्चों के लिए कम से कम बोझिल और अधिक सार्थक बनाया जाए

भारत में स्कूली शिक्षा के लिए यह एक ऐतिहासिक क्षण है, क्योंकि इससे पाठ्यक्रम निर्माण की एक दिलचस्प प्रक्रिया शुरू हो गई है. पाठ्यपुस्तकों को प्रस्थान बिंदु के रूप में नहीं लिया जाएगा, उनका निर्माण विकास मंथन की इस प्रक्रिया से होगा. राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद ने एक व्यापक योजना तैयार की है, जिसमें गणित, इतिहास या भाषाओं के अध्यापन जैसे पाठ्यक्रमों के क्षेत्रों से संबंधित राष्ट्रीय समूह बनाए गए हैं और इसमें लिंगभेद और कमज़ोर वर्ग के मामलों आदि पर भी चर्चा होगी. इन विशेष समूहों ने ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में पाठ्यक्रमों के दिशानिर्देशों के लिए कुछ सिद्धांत तय किए, जिनके आधार पर पाठ्यक्रम बनाने की प्रक्रिया शुरू करने का निर्णय किया गया.

समझ की कमी और घनत्व को नई पाठ्यक्रम समितियों के लिए मुख्य चुनौती माना गया और इस प्रक्रिया में कुछ रोचक पाठ्यपुस्तकें निकल कर सामने आईं. इतिहास समूह ने तो पुरानी पाठ्यपुस्तकों

के स्थान पर बिल्कुल ही नई किताबों के सेट तैयार करने का निर्णय किया. राजनीतिक शिक्षा की पाठ्यपुस्तकों में कुछ ऐसे मुद्दे भी शामिल किए गए जिनसे सत्ता दल को कुछ उलझन भी हो सकती थी. इन पाठ्यपुस्तकों का उद्देश्य कक्षा में तनाव रहित वातावरण पैदा करना था ताकि पाठ्यपुस्तकें ऐसी हों जिनसे अध्यापकों और बच्चों में बहुत कुछ और भी करने की गुंजाइश भी बनी रहे और बच्चे परीक्षाओं में लिखने के लिए ''तथ्यों'' को मात्र रटने तक ही सीमित न रहें.

वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों ही प्रकार की विचारधारा वालों ने नई पाठ्यपुस्तकों की आलोचना की. पाठ्यपुस्तकों के बजाय अध्यापकों और बच्चों को कक्षाओं की प्रक्रिया के केंद्र में लाने की कल्पना से ही विद्वानों का एक वर्ग विशेषकर वामपंथी विचारधारा से जुड़े लोग काफ़ी नाराज़ हो गए. इन विद्वानों ने यह महसूस किया कि इससे अनुशासन की भावना कम हो जाएगी और अध्यापकों और बच्चों को कक्षा में ऐसा वातावरण बनाने का मौका मिल जाएगा जिससे कि वे अपनी विचारधाराओं और पूर्वाग्रहों को कक्षा में ले आएँगे और स्कूली शिक्षा का वह उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा, जिसके अनुसार बच्चों में धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना करना ही स्कूली शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है. इस आलोचना के बावजूद सरकार ने पाठ्यपुस्तकों को अनुमोदित कर दिया.

इन पाठ्यपुस्तकों को प्रकाशित हुए चार वर्ष बीत गए हैं. पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन के तुरंत बाद काफ़ी गर्मागर्म बहस तो हुई, लेकिन इस प्रक्रिया को समझने के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया और पाठ्यपुस्तकों का कोई फ़ीडबैक अध्ययन भी नहीं किया गया. नई पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन के बाद हुई बहस भी मुख्यतः इतिहास की पाठ्यपुस्तकों पर ही केंद्रित रही और पाठ्यक्रम के उन तमाम मूलभूत सिद्धांतों या मान्यताओं को परखने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया जिनके आधार पर नई पाठ्यपुस्तकें तैयार की गई थीं. उदाहरण के लिए एक ही कक्षा के लिए तैयार की गई इतिहास और हिंदी की पुस्तकों के बीच संपर्क-सूत्र क्या है? भाषा शिक्षण के सिद्धांत विभिन्न ज्ञान-शाखाओं के पाठ्यक्रमों की पाठ्यपुस्तकों में कैसे रूपांतरित होते हैं? क्या गणित की पाठ्यपुस्तकें लिखने वाली समिति ने कभी राजनीतिक शिक्षा की समिति के सदस्यों से बात की? हम गणित की पाठ्यपुस्तकों पर कोई चर्चा क्यों नहीं देख पाते हैं? अधिक ज़रूरी तो यह जानना है कि क्या इन पाठ्यपुस्तकों के कारण कक्षा की रीति-नीति में कोई परिवर्तन हुआ और क्या इनसे परीक्षा पर कोई असर पड़ा? इसके अलावा, क्या राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद के लिए यह हर्ष का विषय है कि पाठ्यक्रम दस्तावेज़ में विविधता और विकेंद्रीकरण पर ज़ोर देने के बावजूद भी बारह से अधिक राज्यों ने केंद्रीय रूप में निर्मित इन पाठ्यपुस्तकों के पुनर्मुद्रण के अलावा कुछ भी नया करने का प्रयास नहीं किया. कोई व्यवस्थित तंत्र न होने के कारण ये सवाल अभी भी अनुत्तरित हैं. कोई ऐसा अभिलेखागार भी नहीं है जहाँ आपको पाठ्यपुस्तकों से संबंधित समितियों की बहस के अभिलेख मिल सकते हों. इन तमाम चीज़ों के अभाव में पाठ्यक्रम लेखन पर व्यवस्थित रूप में कोई भी भावी कार्य करना बहुत मुश्किल होगा. अभी तक हम यह नहीं समझ पाए है कि पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य एककालिक कार्य न होकर एक गतिशील प्रक्रिया है और इसे बदलते हुए समय के अनुसार कदम से कदम मिलाकर चलना होगा. साथ ही यह भी समझना होगा कि यह शैक्षिक साधनों में से एक ऐसा साधन है जिसे अध्यापकों और बच्चों के संबंधों की गतिशीलता के रूप में सक्रिय भागीदारी की प्रक्रिया में ही रखा जा सकता है.

अपूर्वानंद झा दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हैं और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान में ग्रीष्म 2010 के विज़िटिंग स्कॉलर रहे हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@hotmail.com>